कोविड पश्चात् दुनिया और बहुजन कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारी

Pramod Ranjan

▶ To cite this version:

Pramod Ranjan. कोविड पश्चात् दुनिया और बहुजन कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारी. अभिनव कदम, 2020, 24 (42), pp.255-266. ⟨10.17613/0chj-ya18⟩. ⟨hal-04461565⟩

HAL Id: hal-04461565

https://hal.science/hal-04461565

Submitted on 19 Feb 2024

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

ISSN 2229-4767 RNI No. 72297|99

अभिनव क़दम -41-42

(संयुक्तांक)

विशेषांक :

महामारी की त्रासदी और हम

संस्थापक-संरक्षक : अब्दुल बिस्मिल्लाह, उत्तमचन्द जन संस्कृति के पक्ष में जर्नल

वर्ष : 24 अंक : (41-42) (संयुक्तांक) जून 2019 - मई 2020

अभिनव कदम (41-42) (संयुक्तांक)

संपादक : जयप्रकाश धूमकेतु
उप-संपादक : अमरेन्द्र कुमार शर्मा
संपादक मण्डल : डॉ. चौथीराम यादव, डॉ. अवधेश प्रधान
डॉ. गोपाल प्रधान, डॉ. संजय राय
डॉ. अमित राय, शिवकुमार पराग
प्रसार व्यवस्था : श्रीमती राजेश्वरी

संपर्क :

'प्रकाश निकुंज'
223, पावर हाउस रोड, निजामुद्दीनपुरा
मऊनाथ भंजन, मऊ (उ.प्र.)–275101
मोबाइल : 09415246755, 09415241755
ई-मेल : (i) patrika.abhinavkadam@gmail.com
(ii) dhoomketu223@gmail.com
(iii) amrendrakumarsharma@gmail.com
वेबसाइट : www.abhinavkadam.com, www.rahulsankrityan.com

सहयोग राशि

यह अंक	200.00
संस्थाओं के लिए	300.00
विदेश में	$ 25
आजीवन सदस्यता	5000.00

प्रकाशक : राहुल सांकृत्यायन सृजन पीठ, मऊनाथ भंजन, मऊ (उ.प्र.)
शब्द संयोजन : श्वेताजाब्स, 68 बहादुरगंज, इलाहाबाद E-mail : vs430186@gmail.com
मुद्रण : प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, ए-21, झिलमिल एंड, इंडस्ट्रीयल एरिया, शाहदरा, दिल्ली-95
e-mail: pd.press@gmail.com

संपादन/संचालन/अवैतनिक, अव्यवसायिक। अभिनव कदम से सम्बन्धित सभी विवाद मऊ न्यायालय के अधीन होंगे। अभिनव कदम में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

कोविड पश्चात् दुनिया और बहुजन कार्यकर्ताओं की ज़िम्मेदारी

प्रमोद रंजन

पूर्वकथन :

इस आलेख में हम देखने की कोशिश करेंगे कि कोविड की रोकथाम के लिए उठाए गए अतिरेकपूर्ण कदमों के कारण दुनिया में क्या स्थितियाँ उत्पन्न होने वाली हैं। विशेष तौर पर सामाजिक वंचना झेल रहे मानव-समुदायों पर इसका क्या प्रभाव पड़ने वाला है। आलेख में भारत के उन शोषित समुदायों को केंद्र में रखा गया है, जो भारतीय आबादी का बहुसंख्यक हिस्सा हैं। इस बहुसंख्या में हिंदू धर्म में अछूत माने गए समुदायों के अतिरिक्त, सामाजिक रूप से तिरस्कृत अन्य निचली जातियां, आदिवासी, विमुक्त घुमंतू जातियां, धर्मांतरित अल्पसंख्यक, किन्नर आदि शामिल हैं। हाल के वर्षों में भारत के इस बहुसंख्यक हिस्से ने अपने सामाजिक-न्याय संबंधी आंदोलनों के दौरान एकता की अभिव्यक्ति के लिए स्वयं को 'बहुजन' (बहुसंख्यक) कहना आरंभ किया है। 'बहुजन' एक अवधारणात्मक शब्द है, जिसका प्रथम प्रयोग 2500 वर्ष पहले बुद्ध के उपदेशों में मिलता है। बुद्ध कहते हैं—'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'। यानी, जो विश्व के बहुसंख्यक मनुष्यों (जनों) के हित में हो, उनके लिए कल्याणकारी हो, वही श्रेयस्कर है। इस प्रकार, 'बहुजन अवधारणा' वैश्विक परिदृश्य को अपने संज्ञान में रखती है और बहुजनों के बीच एकता पर बल देती है, जिनमें रंग-भेद व लैंगिक भेदभाव से पीड़ित आबादी समेत सभी शोषित व वंचित तबके शामिल हैं। यह अवधारणा इन समुदायों को स्वयं को अल्पसंख्यक की बजाय बहुसंख्यक के रूप में देखने और साझा संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है। आलेख में 'बहुजन' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है।

कहा जा रहा है कि अगर नए कोरोना वायरस के संक्रमण को कड़े लॉकडाउन के सहारे रोका नहीं गया होता तो मानव-आबादी का एक बड़ा हिस्सा इसकी भेंट चढ़ जाता। लेकिन क्या यह सच उतना एकांगी है, जितना बताया जा रहा है?

लॉकडाउन के कारण दुनिया भर में लाखों लोग मारे जा चुके हैं और लॉकडाउन खत्म होने के बावजूद, इसके प्रभाव के कारण भारत समेत अनेक मध्यम व निम्न आय वर्ग के देशों की अर्थव्यवस्था तबाह हो चुकी है। करोड़ों लोग गरीबी और बदहाली में

जीने के लिए मजबूर होकर मारे जा रहे हैं।

क्या बदलने वाला है?

कार्यालय और शिक्षण-संस्थानों का जन्म आधुनिक काल की एक उपलब्धि थी। कामकाज और शिक्षा के लिए निर्धारित इन जगहों ने पिछले लगभग 200 सालों में न सिर्फ मानव-मस्तिष्कों को एक साथ लाकर सभ्यता के विकास की नई इबारत लिखी थी, बल्कि एक दूसरे से अलग-थलग पड़े समाजों को एक साथ लाने में भी भूमिका निभाई थी। कोविड-19 के पश्चात दुनिया में कार्यालयों और शिक्षण संस्थानों के मौजूदा स्वरूप के खत्म हो जाना, या बहुत सीमित हो जाना अब तय है। भारत के उच्च शिक्षण संस्थानों में इस परिवर्तन के लिए नया कानून लागू हो चुका है। दूसरी ओर, श्रम-कानूनों को भी लगभग खत्म कर दिया गया है और कंपनियों को खुली छूट दे दी गई है। शारीरिक श्रम के शोषण और मानसिक तनाव की इस चक्की में सिर्फ मजदूर ही नहीं, बल्कि सफेद कॉलर कर्मचारी भी पीसे जाएंगे। पत्रकारों-मीडियाकर्मियों की नौकरियों और वेतन-भत्तों से संबंधित अधिकार भी इसी कानून में परिवर्तन के तहत खत्म किए जा चुके हैं। वैश्विक स्तर पर 1990 के आसपास तेज हुई व्यापारिक गतिविधियों, जिसे भूमंडलीकरण के नाम से जाना गया था, के समाप्त हो जाने का खतरा है। इसका बहुत बुरा प्रभाव विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। भारत समेत अनेक देशों की गरीब आबादी भूमंडलीकरण से मिले लाभ के कारण मध्यम आय वर्ग में पहुंच सकी थी।

दूसरी ओर, सफेद व ब्लू कॉलर कर्मचारियों की छंटनी की सूचनाओं के बाद अब लॉकडाउन खुलने पर जगह-जगह से खब़रें आ रही हैं कि व्यावसायिक-नगरों में काम पर लौटे मजदूरों को पहले की तुलना में अधिक घंटों तक काम करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इन पंक्तियों के लेखक के बिहार स्थित पैतृक गांव से अनेक मज़दूरों को लॉकडाउन के बाद कंपनियों ने बसों में भरकर हजारों किलोमीटर दूर स्थित मुंबई, चेन्नई, सूरत आदि शहरों में काम पर वापस बुलाया था। लेकिन उनमें से अनेक पिछले सप्ताह वापस आ गए हैं। उनका कहना है कि जिस तरह से उनसे काम लिया जा रहा था, वह हाड़ तोड़ देने वाला था। उन्हें उम्मीद है कि उनके इस सत्याग्रही किस्म के विरोध से कंपनियां झुक जाएंगी। लेकिन हम जानते हैं कि उनकी उम्मीद दिवा-स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भूख उन्हें उसी काम पर वापस ले जाएगी, और हो सकता है कि उस समय तक वहां उनकी जगह उनसे अधिक भूखे लोग ले चुके होंगे।

निजी उद्यमों व उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत ऐसे सौभाग्यशाली लोग, जिन्हें नौकरी से निकाला नहीं गया है, वे अपने घरों से काम कर रहे हैं। इनमें से बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जो अब कभी भी कार्यालय नहीं लौट पाएंगे। उनके मोबाइल फोन, कंप्यूटर और कैमरों में विशेष प्रकार के सॉफ्टवेयर डाले जाएंगे। 'बॉसवेयर' के नाम से

पुकारे जाने वाले साफ्टवेयरों के इस समूह से ऐसी डिजिटल-निगरानी संभव हो सकेगी, जो उनके पल-पल के काम की ही नहीं, बल्कि उनके मन और शरीर की हलचलों की भी खबर नियोक्ता तक पहुंचाएगी।

इस निगरानी में 'ईमेलों को पढ़ना, सोशल-मीडिया पर प्राप्त संदेशों का विश्लेषण करना, कौन किससे कब मिल रहा है, इसकी जानकारी रखना, बायोमैट्रिक्स डाटा जमा करना शामिल रहा है, ताकि पता लगाया जा सके कर्मचारी अपने वर्क-स्पेस का उपयोग कैसे कर रहे हैं'। 2018 में 239 बड़े निगमों में किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया था कि 50 प्रतिशत निगम निगरानी की इन 'गैर-पारंपरिक' पद्धतियों का प्रयोग कर थे। कोविड के आने के बाद अब इस डिजिटल निगरानी को और सूक्ष्म स्तर पर ले जाया जा रहा है, ताकि पता लगाया जा सके कि 'कर्मचारी का मन अपने काम में लग रहा है या नहीं और काम करते समय उनके तनाव का स्तर किस प्रकार का रहता है'। कोविड के दौर में कुछ देशों की सरकारों ने इनका प्रयोग भी शुरू किया है।

बात यहीं तक सीमित नहीं रहेगी। जिस प्रकार से अर्थव्यवस्था के विकास की दर गिरी है, उसे उठाने के प्रयास के दौरान ऐसी असाधारण कोशिशें की जाएंगी, जिसमें निम्न और मध्यवर्ग की एक बड़ी आबादी अपने वर्गीय स्थानों से च्युत होकर नीचे जाएगी। मध्य वर्ग गरीबी की ओर, और गरीब भुखमरी की ओर बढ़ेंगे। इन तबकों की मानवीय-स्वतंत्रता को अर्थ-व्यवस्था को पर उठाने की तात्कालिक, अस्थाई आवश्यकता एवं अगली महामारी के भय के मिले-जुले तर्क से बाधित किया जाएगा।

लेकिन जैसा कि मुक्त बाजार के समर्थक, नोबेल पुरस्कार विजेता अमेरिकी अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन (1912-2006) का मानना था—'अस्थाई सरकारी कार्यक्रमों से अधिक स्थाई कुछ नहीं है'; ये तर्क भी स्थाई बने रहने के लिए प्रवृत्त होंगे। दरअसल, सिर्फ सरकारें ही नहीं, मुक्त बाजार समेत सभी प्रकार की सत्ताएं जिन कार्यक्रमों को अस्थाई कहते हुए जनता के सामने रखती हैं, वे अपने भीतर स्थाई हो जाने की प्रवृत्तियां समेटे होती हैं। आने वाले समय में हम इसे एक बार फिर घटित होते देखेंगे।

मसलन, कहा जाएगा कि राष्ट्र और समुदायों को आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर करने के लिए आवश्यक है कि आबादी की रफ्तार को कम किया जाए। विकास के लिए आवश्यक होता है कि जिस दर से आबादी बढ़ रही है, उसके अनुपात में विकास की दर अधिक हो। मानवाधिकार, श्रमिकों के हितों की सुरक्षा से संबंधी कानून जैसी संवेदनशील अवधारणाएं पिछले कुछ दशकों में ही स्थापित हुई हैं। इनकी स्वीकार्यता के पीछे आनुपातिक रूप से तेज आर्थिक विकास दर की निर्णायक भूमिका रही है। आर्थिक विकास ने अतिरिक्त समृद्धि को जन्म दिया, जिसने इन अवधारणाओं का पालन पूँजीपतियों के लिए अपेक्षाकृत आसान बना दिया था। लेकिन चूंकि अब

विकास की दर धीमी रहेगी इसलिए कहा जाएगा कि नीचे वाले तबके अपनी आबादी कम करें, ताकि विकास और आबादी के बीच संतुलन बन सके। आबादी-नियंत्रण को रोज़गार, सरकार द्वारा प्रदत्त लाभों, अधिकारों आदि से अधिकाधिक जोड़ा जाएगा और इस संबंध में नए कानून, प्रोत्साहन व दंड योजनाएं पेश की जाएँगी। तर्क दिया जाएगा कि वे ही लोग विकास का लाभ लेने के अधिकारी हैं जो अपने जैसे ग़रीबों की भीड़ नहीं बढ़ाते हैं और विकास की दर को संतुलित बनाने में भूमिका निभाते हैं।

इसी प्रकार, संभवतः सरकारें व निजी उद्यम नौकरियों में मिलने वाले वेतन-भत्तों को विकास की दर से जोड़ने के लिए नियम भी बनाए जाएंगे। इस नियम के तहत कंपनी या राष्ट्र की विकास दर बढ़ेगी तो वेतन-भत्ता भी बढ़ेगा और अगर कम होगी तो वेतन-भत्ते भी कम हो जाएंगे। जैसे पिछले कुछ वर्षों से भारत में पेट्रोलियम पदार्थों के दाम कम-अधिक होते रहे हैं, या जैसे अब रेलवे के निजीकरण के बाद यात्री-किराया भी कम-बेशी होगा, कुछ उसी तरह। कुछ देशों में राजनयिकों के वेतन-भत्ते इसी प्रकार देश की विकास-दर के साथ जुड़े हुए हैं। इसके पीछे तर्क यह होगा कि इससे पारिश्रमिक पाने वाले का मन विकास के साथ अटका रहेगा और वह दुनिया को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए काम करेगा। मानवधिकारों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी कल्पना बहुत कठिन नहीं है।

ऐसे और भी अनेक परिवर्तन होंगे, जिनमें सबसे जबर सर्वव्यापी डिजिटल सर्विलांस होगा, जो मनुष्य की आज़ादी को न्यूनतम स्तर पर पहुंचा देने की क्षमता रखता है।

जब इतने परिवर्तन होंगे तो स्वभाविक रूप से मौजूदा उदार-लोकतंत्र इनके दबाव को नहीं झेल पाएगा। लोकतंत्र की इस प्रणाली का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ था, उनके बदल जाने के बाद राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन अवश्यंभावी होगा। लॉकडाउन के दौरान दुनिया के 'सुपर रिच' की संपत्ति में बेतहाशा वृद्धि हुई है, जिनमें से अधिकांश टेक जाइंट्स (डिजिटल तकनीक से संबंधित अल्फाबेट, फेसबुक, माइक्रोसॉफ्ट, टेस्ला आदि) हैं। आने वाले वर्षों में उनकी संपत्ति में यह अप्रत्याशित वृद्धि जारी रहेगी। उनकी रूचि भी ऐसी ही किसी राजनीतिक व्यवस्था में होगी, जिसका उन्हें बार-बार प्रबंधन करने की आवश्यकता न हो।

ऐसे में आशंका है कि निरंकुशता और वंशवाद पर आधारित राजनीतिक प्रणाली भारत समेत दुनिया के अनेक देशों में मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था का स्थान लेने की कोशिश करेगी।

इसलिए, कमजोर तबक़ों के उत्थान के लिये प्रतिबद्ध लोगों को इससे संबंधित कुछ मूल प्रश्नों को विमर्श के केंद्र में लाने की कोशिश विशेष तौर पर करनी चाहिए,

ताकि हम इन परिवर्तनों के दौरान वंचित तबकों के हितों की रक्षा के लिए संघर्ष कर सकें। यह ज़िम्मेदारी तीसरी दुनिया के देशों के ही नहीं, बल्कि विश्व के विकसित देशों में कार्यरत सभी प्रतिबद्ध सामाजिक-कार्यकर्ताओं को उठानी चाहिए।

बीमारियों के महासागर में कोविड-19 की जगह

यह देखना इस विमर्श का प्रारंभिक चरण है कि जिस कोविड-19 के भय से इतने बड़े परिवर्तनों के घटित होने की आशंका है, वह भय कितना वास्तविक है? और,

क्या सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर समूहों को कोरोना वायरस से उतना ही खतरा है, जितना कि अन्य बीमारियों तथा अकाल और भुखमरी से; जिसकी अब आहट सुनाई देने लगी है? या, इन वर्गों में कोविड-19 के इस खतरे को महसूस करने के स्तर में गुणात्मक अंतर है? 'मजदूर समाचार' नामक पत्रिका के संपादक शेर सिंह कहते हैं कि कोविड-19 'साहबों' की बीमारी है। उनका आकलन ठीक है। वंचित तबका अपने जीवन-अनुभव के आधार पर इस बीमारी को उस गंभीरता से नहीं ले रहा, जिस गंभीरता से उच्च वर्ग ले रहा है।

टी.बी., डायरिया, न्यूमोनिया जैसी घातक बीमारियों से ग्रस्त वंचित तबकों को वह बीमारी कितनी खतरनाक लग सकती है, 80 फीसदी मामलों में जिसके कोई लक्षण ही नहीं दिखते, जिसके 95 प्रतिशत मरीज स्वतः ठीक हो जाते हैं और जिसमें संक्रमित व्यक्ति के मृत्यु का जोखिम 01–1 प्रतिशत के बीच है। वह भी अधिकांश 60 से 85 साल के लोगों के बीच। उनमें भी अधिकांश वे; जो हृदय-रोग, कैंसर, किडनी, हाइपरटेंशन आदि 'अभिजात' बीमारियों से बुरी तरह पीड़ित रहे हों।

अव्वल तो भारत के वंचित तबक़ों में इस आयु वर्ग के लोगों की संख्या ही विशेषाधिकार प्राप्त तबकों की तुलना में कम है। हालांकि यह बहुत विडंबनापूर्ण, लेकिन सच है कि इन तबके के जो लोग इस आयु-वर्ग में हैं, उनमें से अधिकांश अपनी औसत आयु पूरी कर चुके हैं।

वर्ष 2004 से 2014 के बीच के एक अध्ययन के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों यानी आदिवासियों की औसत जीवन-प्रत्याशा 43 वर्ष, अनुसूचित जातियों यानी दलितों की 43 वर्ष, ओबीसी मुसलमानों यानी पसमांदा मुसलमानों की 50 वर्ष और उच्च जाति मुसलमानों यानी अशरफ मुसलमानों की 49 वर्ष है। जबकि गैर-मुसलमान उच्च जाति के लोगों (हिंदू व अन्य गैर-मुसलमान) की औसत जीवन प्रत्याशा 60 वर्ष है। हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि उच्च जातियों के सभी लोग 60 वर्ष जीते हैं और वंचित तबकों के 43 से 50 साल। लेकिन फिर भी यह अध्ययन बताता है कि इन तबकों की औसत उम्र में बहुत ज्यादा फर्क है तथा वंचित तबकों की मनुष्योचित आधुनिक जीवन-स्थितियों, पौष्टिक भोजन तथा स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच विशेषाधिकार प्राप्त तबकों की तुलना में बहुत कम है।

उपरोक्त अध्ययन में जाति और धर्म से इतर मजदूर और गैर-मजदूरों की औसत उम्र को भी देखा गया था। पेशों के आधार पर इनकी जीवन-प्रत्याशा अलग-अलग है। एक भारतीय मजदूर की औसत उम्र 45.2 वर्ष है, जबकि समान श्रेणी के गैर-मजदूर की औसत उम्र 48.4 वर्ष है। इसी तरह, एक 'पिछड़े' या कम विकसित राज्य में रहने वाले और विकसित राज्य में रहने वाले लोगों की औसत उम्र में बड़ा फर्क है। 'पिछड़े राज्यों' ने अपने नागरिकों की उम्र सात साल कम कर दी है। विकसित राज्य में रहने वाले लोगों की औसत उम्र 51.7 वर्ष है, जबकि पिछड़े राज्यों की 44.4 वर्ष।

भारत में विभिन्न सामाजिक समूहों की औसत आयु, 2004 और 2014

सामाजिक समूह	2004 में औसत आयु	2014 में औसत आयु
उच्च जाति (गैर-मुसलमान)	55	60
ओबीसी (गैर-मुसलमान)	49	52
ओबीसी मुसलमान	43	50
उच्च जाति मुसलमान	44	49
अनुसूचित जाति	42	48
अनुसूचित जनजाति	45	43

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ दलित स्टडीज द्वारा 2013 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार (जिसे बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपने स्त्रियों संबंधी एक विशेष अंतराष्ट्रीय अध्ययन में उद्धृत किया) दलित और उच्च जाति की महिलाओं की औसत उम्र में 14.5 साल का अंतर था। दलित महिलाओं की औसत जीवन-प्रत्याशा 2013 में 39.5 वर्ष थी जबकि ऊंची जाति की महिलाओं की 54.1 वर्ष।

हालांकि हिंदुओं के अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) के संबंध में ऐसा कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है लेकिन पौष्टिक भोजन के अभाव और कड़े शारीरिक श्रम के कारण वंशानुगत रूप से इन कृषक और शिल्पकार समुदायों की औसत उम्र भी अधिक नहीं है।

सिर्फ औसत उम्र के कारण ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक अवांछनीय कारणों से भी कोविड : 19 वंचित तबकों की स्वाभाविक प्राथमिकता सूची में जगह नहीं पा सकती है। मसलन, उपरोक्त अध्ययन में यह तथ्य भी पाया गया था कि 2004 से 2014 के बीच के 10 सालों में जहां सभी तबकों की औसत उम्र बढ़ी वहीं आदिवासियों की औसत उम्र कम हो रही थी।

बहरहाल, मुख्य बात यह है कि भारत समेत दुनिया का बहुजन तबका कोविड की तुलना में कहीं बहुत बड़े हमलों से पहले से ही घिरा है और कोविड के निदान के लिए उठाए गए कदमों के परिणाम-स्वरूप जो होने वाला है, उसकी भयावहता का अधिकांश हिस्सा भी इन्हीं की ओर धकेल दिया जाएगा।

फिलहाल हम बीमारियों की घातकता (मृत्यु दर और शारीरिक पीड़ा के स्तर) के अंतर को ही देखें तो पाते हैं कि टी.बी., डायरिया जैसे रोगों के अधिकांश शिकार गरीब युवा होते हैं और न्यूमोनिया के शिकार गरीब बच्चे। कमजोर तबकों के लिए ये बीमारियाँ शाश्वत महामारी बनी हुईं हैं और जैसा कि हम आगे देखेंगे; इनसे होने वाली मौतों की संख्या कोविड की तुलना में बहुत ज्यादा है।

कुछ और आंकड़े

विश्व में हर साल लगभग 1 करोड लोगों को टी.बी. के लक्षण उभरते हैं, जिसे हम सामान्य भाषा में 'टी.बी. हो जाना' कहते हैं। 2018 के आंकड़ों के अनुसार, इन एक करोड़ लोगों में से लगभग 15 लाख लोगों की हर साल मौत होती है।

भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, नाइजीरिया व दक्षिण अफ्रीका एवं अन्य देशों के ग़रीबों के लिए सबसे घातक टी.बी. का संक्रमण है। यह कोरोना की तुलना में बहुत घातक है। टी.बी. में अगर पूर्ण इलाज़ न मिले तो मृत्यु की संभावना 60 प्रतिशत तक होती है। जबकि जैसा कि पहले कहा गया, कोविड से मौत की संभावना एक प्रतिशत से भी कम होती है। हां, यह ठीक है कि टी.बी. का इलाज उपलब्ध है, इसके बावजूद न सिर्फ टी.बी. से मरने वालों की संख्या कोविड की तुलना में बहुत ज्यादा है, बल्कि इसका प्रसार भी तेजी से हो रहा है। और ऐसा भी नहीं है कि कोविड दुनिया की एकमात्र ला-इलाज बीमारी है। एचआईवी, डेंगू, इबोला आदि के अतिरिक्त अनेक जानलेवा संक्रामक बीमारियाँ अब भी ला-इलाज़ हैं। इनकी न कोई निर्धारित कारगर दवा है, न टीका। यहां तक कि सामान्य फ्लू, जिसे हम वायरल बुखार कहते हैं, उसकी भी कोई दवा या कारगर टीका विकसित नहीं हुआ है। यह वायरल बुखार भी हर साल लाखों लोगों की जान लेता है। इन सभी बीमारियों से हम उसी तरह अपने शरीर की प्रतिरोधक-क्षमता (इम्युन सिस्टम) के सहारे लड़ते और जीतते हैं, जैसे कि कोविड से।

कोविड के अनुपातहीन भय को समझने के लिए लेख के साथ प्रकाशित चार्ट में कुछ प्रमुख बीमारियों से संबंधित आंकड़े देखें। चार्ट में दर्शाये गये 'मृत्यु दर' का अर्थ है कुल संक्रमित रोगियों (रिपोर्टेड और अनरिपोर्टेड दोनों सम्मिलत) में से मरने का वालों का प्रतिशत।

चार्ट में उल्लिखित 'संक्रमण फैलने की दर' का अर्थ है कि किसी बीमारी से संक्रमित एक व्यक्ति/जीव कितने अन्य व्यक्तियों को संक्रमित करता है। कोरोना वायरस से संक्रमित एक व्यक्ति औसतन 1.7 से लेकर 6.6 व्यक्तियों तक को संक्रमित कर देता है। जबकि टी.बी.का एक मरीज 10 अन्य व्यक्तियों को संक्रमित करता है। चार्ट में इन रोगों से हर साल मरनें वालों की औसत संख्या भी दी गई है।

संक्रामक बीमारियों का वैश्विक आंकड़ा (आधिकारिक स्त्रोतों से संकलित)

बीमारी	मृत्यु दर	संक्रमण फैलने की दर	प्रतिदिन औसतन मौतें	प्रतिवर्ष औसतन मौतें	संक्रमण का वाहक	रोग-जनक
कोविड-19	01–1%	1.7- 6.6	-	लगभग 10 लाख (दिसंबर, 19 से सितंबर, 20 तक। आंकड़ों को अतिरेकी ढ़ंग से संकलित करने के बावजूद)	थूक की बूंदों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क में आने से। संक्रमण के तरीकों की अभी तक पूरी जानकारी नहीं।	वायरस
टी.बी.	7-43%	10	4109	15 लाख	हवा में उड़ने वाले सूक्ष्म बूंदों से, जो बहुत समय तक वातावरण में मौजूद रहती हैं	बैक्टीरिया
न्यूमोनिया	5-30%	-	2191	8 लाख	न्यूमोनिया के वायरस और बैक्टीरिया बच्चों की नाक या गले में पाए जाते हैं। संक्रमण के तरीकों की अभी तक पूरी जानकारी नहीं।	बैक्टीरिया और वायरस
एचआईवी/एड्स	80-90%	2-5	2109	7.70 लाख	शरीर द्रव से	वायरस
मलेरिया	0.50-10%	80	1095	4 लाख	मच्छर काटने से	परजीवी
हेपटाइटिस-सी	3-7%	-	1093	3.99 लाख	रक्त के संपर्क में आने से	वायरस
मौसमी इन्फ्लूएंजा (फ्लू)	0.10-0.45%	2.5	794-1784	2.90 लाख से 6.5 लाख	हवा में उड़ने वाले सूक्ष्म बूंदों से, जो बहुत समय तक वातावरण में मौजूद रहती हैं	वायरस
टायफायड	1-30%	2.8	441	1.61 लाख	मल-कण से	बैक्टीरिया
डायरिया (इलाज नहीं होने पर)	5-10	2.13	1438	5.25 लाख	मल-कण से	बैक्टीरिया
रैबीज	100%	1.6	150	55 हजार	कुत्ते के काटने से	वायरस

जिन अन्य संक्रामक बीमारियों से दुनिया के सबसे अधिक गरीब लोग मरते हैं, उनका आधिकारिक आंकड़ा इस प्रकार है : डायरिया से हर साल लगभग 10 लाख, न्यूमोनिया से 8 लाख, मलेरिया से 4 लाख, हेपेटाइटिस-सी से 3.99 लाख और हैजा से लगभग 1.43 लाख लोग मरते हैं।

अकेले भारत के आंकड़ों को देखना और भयावह है। भारत में हर साल 25 लाख से अधिक लोगों को टी.बी. होती है, जिनमें से हर साल 5 लाख लोगों की मौत हो जाती है। टी.बी. से मौतों के मामले में भारत विश्व में पहले स्थान पर है।

हमारे देश में न्यूमोनिया से हर साल 1.27 लाख लोग मरते हैं, जिनमें सबसे अधिक बच्चे होते हैं। न्यूमोनिया से मरने वालों में विश्व में भारत का नंबर दूसरा है। पहले नंबर पर नाइजीरिया है। भारत में हर साल मलेरिया से लगभग 2 लाख लोग मरते हैं, जिनमें से ज्यादातर आदिवासी होते हैं। भारत में हर साल एक लाख से अधिक बच्चे डायरिया से मर जाते हैं। इसी तरह हैजा से भी यहां हर साल हजारों लोग मरते हैं।

जैसा कि मैंने पहले कहा, कोविड-19 की कथित भयावहता, वंचित तबकों के बीच मौत का तांडव करती इन बीमारियों के सामने नगण्य है। दरअसल, कोविड के अतिरेकपूर्ण भय का निर्माण, इसे 'वैश्विक महामारी' घोषित करने के लिए विश्व स्वास्थ संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा अपनाई गई आंकड़ा-संकलन की छल-पूर्ण पद्धति और उन भ्रामक आंकड़ों के रीयल-टाइम में उसके प्रसारण से हुआ है।

जबकि वास्तविक आंकड़े अलग कहानी कहते हैं। टी.बी. से बचाव के लिए काम कर रही 10 वैश्विक संस्थाओं ने इसी महीने (15 सितंबर, 2020 को) 'टी.बी. महामारी पर कोविड-19 का प्रभावः एक सामुदायिक परिप्रेक्ष्य' शीर्षक एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। इस रिपोर्ट में अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि लॉकडाउन के प्रभाव और सारे संसाधनों को कोविड के इलाज में झोंक दिए जाने के कारण 2021 में टी.बी. से 5 लाख 25 हजार अतिरिक्त लोग मरेंगे। इसके अलावा, आने वाले कुछ वर्षों में लगभग 30 लाख अतिरिक्त लोग टी.बी. से सिर्फ इसी कारण मारे जाएंगे क्योंकि टी.बी. से मरने वाला तबका ऐसी भयंकर गरीबी में जाने वाला है, जहां न उसे स्वयं इलाज की परवाह होगी, न ही उसके लिए इलाज उपलब्ध होगा।

कोविड के लिए उठाए गए अतिरेकपूर्ण कदमों के कारण सिर्फ टी.बी. ही नहीं, एचआईवी, किडनी-रोग, कैंसर आदि से मरने वालों की संख्या में इसी प्रकार बेतहाशा वृद्धि हो रही है।

लॉकडाउन का असर

इन बीमारियों से होने वाली मौतों के अतिरिक्त लॉकडाउन के कारण स्थिति कितनी खौफनाक हो गई है, इसकी बानगी देखें। जॉन्स हॉपकिन्स ब्लूमबर्ग स्कूल ऑफ पब्लिक

हेल्थ के शोधकर्ताओं द्वारा चर्चित स्वास्थ्य जर्नल 'द लैंसेट ग्लोबल' में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, अगर बचाव के लिए बहुत तेजी से कदम नहीं उठाए गए तो लॉकडाउन के कारण बढ़ी बेरोज़गारी और स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण अगले केवल छह महीने में भारत में लगभग 3 लाख अतिरिक्त बच्चों को कुपोषण व अन्य बीमारियों से मारे जाने की आशंका है। इस शोध के अनुसार पूरे दक्षिण एशिया में 4 लाख से अधिक अतिरिक्त बच्चे मारे जा सकते हैं। यानी, दक्षिण एशिया में हर रोज 2400 बच्चों की अतिरिक्त मौतें होंगी। भारत के अलावा पाकिस्तान में 95,000 बांग्लादेश में 28,000, अफग़ानिस्तान में 13,000, और नेपाल में 4,000 बच्चे अगले छह महीने में लॉकडाउन से अर्थव्यवस्था को हुए नुकसान के कारण मर जाएंगे। वैश्विक स्तर पर निम्न और मध्यम आय वाले 118 देशों में तीन परिदृश्यों के आधार पर किए गए इस विश्लेषण का अनुमान है कि इन छह महीनों में 12 लाख अतिरिक्त बच्चे अपना पांचवां जन्मदिन देखने से पूर्व काल के गाल में समा जाएंगे। यह संख्या आम दिनों में कुपोषण व अन्य बीमारियों से होने वाली मौतों के अलावा है। यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेन्स इमरजेंसी फंड (यूनीसेफ/ळच्च्ईं) के दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय निदेशक ने पिछले दिनों इस संबंध में एक बयान जारी कर कहा कि 'हमें हर कीमत पर दक्षिण एशिया में माताओं, गर्भवती महिलाओं और बच्चों की रक्षा करनी चाहिए। महामारी से लड़ना महत्वपूर्ण है, लेकिन हमें मातृ और बाल मृत्यु को कम करने की दिशा में दशकों में हुई प्रगति की गति को कम नहीं करना चाहिए।'

हम सब जानते हैं कि कुपोषण और इलाज के अभाव में बच्चों की मौत किस तबके में होती है। यह उन लोगों की समस्या नहीं है, जो सरकार को लॉकडाउन बढ़ाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, न ही यह उनकी समस्या है, जिनके लिए लॉकडाउन के दौरान टी.वी. सीरियलों के नए एपिसोडों का प्रसारण नहीं होना एक बड़ी पीड़ा का सबब रहा था।

जगह-जगह से खबरें आ रही हैं कि हजारों किशोरी व युवतियां मजबूरी वश देह-व्यापार में उतर रही हैं। बच्चों और महिलाओं की ट्रैफिकिंग बहुत तेजी से बढ़ रही है। अनेक अध्ययनों में उजागर होता रहा है कि इनमें लगभग सभी बहुजन तबके की होती हैं।

लॉकडाउन के कारण दुनिया पर भयावह अकाल की छाया मंडरा रही है, जिसे अध्येता 'कोविड-19 अकाल' का नाम दे रहे हैं। यह अकाल कितना बड़ा है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि 2020 के अंत तक ही 13 करोड़ अतिरिक्त लोगों के भुखमरी की स्थितियों में पहुंच जाने तथा 4.9 करोड़ अतिरिक्त लोगों को घनघोर गरीबी में धकेल दिए जाने का अनुमान है। डब्ल्यूएफपी की नई वैश्विक भूख निगरानी प्रणाली 'हंगर मैप', जो वास्तविक समय में भूख से पीड़ित आबादी को ट्रैक करती है,

के अनुसार, फरवरी से लेकर जून, 2020 के बीच 4.5 करोड़ लोग संभवतः भयानक खाद्य संकट में धकेले जा चुके हैं।

एक प्रमुख स्वयंसेवी संस्था द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार, कोविड-19 से बचाव के लिए अपनाए गए विवेकहीन उपायों से पैदा हुई सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के कारण इस साल के अंत तक हर रोज लगभग 12 हजार लोग ठीक से भोजन नहीं मिलने कारण मौत के मुंह में समा सकते है, अगले तीन महीनों में इनकी संख्या 3 लाख लोग प्रतिदिन तक रह सकती है। अनेक संस्थाओं का आकलन है कि दक्षिण एशिया के देश, विशेष कर भारत; भूख की महामारी के एक नए, विशालकाय एपिसेंटर (उपरि केंद्र) के रूप में उभर रहा है।

हम सब यह भी सहज ही जानते हैं कि 'कोविड:19 अकाल' में मरने वाले लोग और तबाह होने वाले कुनबे किस तबके के होंगे।

बहुजन कार्यकर्ता क्या करें?

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और विश्व असमानता डाटाबेस, पेरिस के सह-निदेशक थॉमस पिकेटी का अनुमान है कि 2020 की यह कोविड-19 महामारी दुनिया के अनेक देशों में बड़े परिवर्तनों का वाहक बनेगी। मुक्त-व्यापार और बाजार की गतिविधियों पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाए जाने संबंधी विमर्श को चुनौती मिलेगी और समाज से इनकी गतिविधियों में हस्तक्षेप करने की मांग उठेगी।

लेकिन सामाजिक रूप वंचित तबकों के संदर्भ में इन मांगों का नतीजा क्या होगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि दुनिया के मजलूम समुदाय, नई समतावादी राजनीतिक संस्कृति के लिए कितनी एकजुटता और प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं? यह इस पर भी निर्भर करेगा कि वे संपूर्ण मानव जाति के पक्ष में जाने वाली विश्वदृष्टि का निर्माण कर पाते हैं या नहीं। मेरा अनुमान है कि इस दौरान लोग अम्बेडकरवादी, समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधाराओं की ओर उम्मीद भरी नज़रों से देखेंगे।

जैसा कि पहले कहा गया, इतना तय है कि कोविड-19 के पश्चात् दुनिया वैसी ही नहीं रहेगी, जैसी कि कोविड-19 के पूर्व थी। ऐसे में परिवर्तनकारी समाज-कर्म में जुटे हम सभी कार्यकर्ताओं को अपनी रणनीतियों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। पिछले कई वर्षों से बहुजन आंदोलन आर्थिक विकास दर की तेज वृद्धि से उत्पन्न हुए भौतिक संसाधनों के समान वितरण और ऐतिहासिक घटनाक्रमों में सयास पीछे धकेल दिए गए, या छूट गए समुदायों की उनमें हिस्सेदारी पर केंद्रित रहे हैं। भारत के विशेष संदर्भ में यह सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग और वंचित तबकों की राजनीतिक पदों पर प्रतीकात्मक हिस्सेदारी के इर्द-गिर्द सीमित रहा है। इसके अतिरिक्त हमारे आंदोलनों का एक बड़ा हिस्सा स्थानीयता पर बल देता रहा है।

बदली हुई परिस्थिति में हमें इस रणनीति को पार्श्व में धकेल कर वैश्विक स्थितियों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। हमें स्थानीय से वैश्विक होने की आवश्यकता है।

राजनीतिक रूप से हमें उदार लोकतंत्र की डोर उस समय तक थामें रहने की कोशिश करनी चाहिए, जब तक कि इससे अधिक बेहतर, व्यवहारिक अवधारणा हमारे संघर्षों से न उत्पन्न हो। लेकिन हमें इस व्यवस्था में तेजी से मजबूत हो रहे वंशवाद को रोकना होगा। अगर हम यह नहीं कर सके तो हार पहले से ही तय है। जातिवाद, नस्लवाद और पूंजीवाद- जैसी सभी अवधारणाओं का गर्भ वंशवाद ही है। जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से विज्ञान के नए पुरोहित इस वंशवाद को एक तीक्ष्ण वैचारिक और जैविक आभा देने की कोशिश में जुटे हैं। शीघ्र ही अमीरों की संततियों को इस प्रकार विकसित किया जा सकेगा कि वे दुनिया के शाश्वत स्वामी बन सकें। यह नीत्शे का सुपरमैन होगा। अधिक जैविक खूबियों से लैस एक अतिमानव। अनेक रूपों में इसकी शुरूआत हो चुकी है और कोविड पश्चात् इसे समय की मांग और न टाले जाने वाली आवश्यकता के रूप में प्रचारित और स्वीकृत करवाने की कोशिश की जाएगी।

बहुजन कार्यकर्ताओं को देखना चाहिए कि दुनिया में तकनीक और विज्ञान के पटल पर क्या घटित हो रहा है और उसके पीछे कौन-सी शक्तियां हैं और उनका जीवन-दर्शन क्या है। कहीं वे दुनयिा को स्वर्ग तो नहीं बनाना चाहते? अगर हां, तो जीवन-मरण के प्रश्न की भांति उनसे भिड़ जाने की आवश्यकता है, क्योंकि स्वर्ग बहुत थोड़े से लोगों के लिए होते हैं। अगर वे स्वर्ग बना रहे हैं तो जाने-अनजाने बहुसंख्यक आबादी के लिए शाश्वत नरक भी अवश्य निर्मित कर रहे हैं।

भारत में हमारे पास वेदों, पुराणों और स्मृतियों को चुनौती देने का अनुभव है। हमने उनके नैतिक पक्ष को स्वीकार किया, उसे लोकतांत्रिक बनाया और आध्यात्मिकता को 'हरि को भजे सो हरि का होई' में तब्दील कर विजय हासिल की।

अब हमें विज्ञान, तकनीक और विशेषज्ञता की दिशाओं को चुनौती देनी होगी। वे पवित्र ग्रंथ भी स्वर्ग का दावा और वादा करते थे, जिसकी हकीक़त पहचानने से हमें सदियों तक रोका गया था। लेकिन इस वार यह देरी पहले की तुलना में बहुत त्रासद और शाश्वत हो सकती है।

हमारा संघर्ष कठिन होने वाला है, लेकिन अगर हम समय रहते ठोस योजनाएं बनाएं और लोगों तक अपनी बात पहुंचाने में सफल हों, तो इस संक्रमण काल को अपनी शाश्वत सामूहिक-तबाही में बदलने से हम रोक सकते हैं। हमें तत्काल इन कोशिशों में जुट जाना चाहिए। ❑

संपर्क सूत्र : प्रमोद रंजन इन दिनों असम विश्वविद्यालय के रवीन्द्रनाथ टैगोर स्कूल ऑफ़ लैंग्वेज एंड कल्चरल स्टडीज़ में सहायक-प्रोफ़ेसर हैं। संपर्क : 91-9811884495, janvikalp@gmail.com]